नया ज्ञानोदय

जनवरी-मार्च 2024
पृष्ठ 80
मूल्य : 50 रुपये

समकालीन कविता विशेषांक

भारतीय ज्ञानपीठ

भारतीय ज्ञानपीठ

संस्थापक

श्रीमती रमा जैन
श्री साहू शांति प्रसाद जैन

नया ज्ञानोदय

साहित्य, समाज, संस्कृति और कलाओं पर केंद्रित

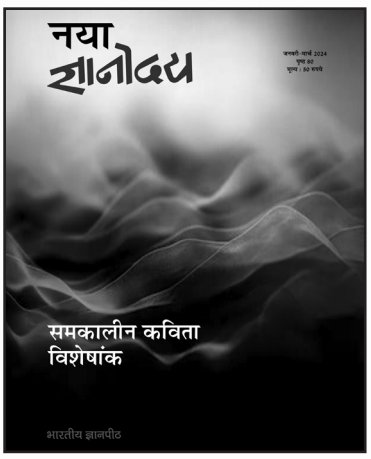

अंक : 225 | जनवरी-मार्च 2024

सम्पादक

मधुसूदन आनन्द

सह-सम्पादक

महेश्वर, प्रभाकिरण जैन

साहू अखिलेश जैन
प्रबन्ध न्यासी, भारतीय ज्ञानपीठ

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ
18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड,
नई दिल्ली-110 003
फोन : 011-2462 6467, 2469 8417, 4152 3423
ई-मेल : nayagyanoday@gmail.com
sales@jnanpith.net
gmbharatiyajnanpith@gmail.com

वेबसाइट : www.jnanpith.net

Naya Gyanodaya
A Literary Quarterly Magazine
Editor : Madhu Sudan Anand
Language : Hindi
Published by **Bharatiya Jnanpith**
18, Institutional Area, Lodi Road,
New Delhi-110 003

मूल्य :
50 रुपये + 10 रुपये (डाक खर्च)

व्यक्तियों / संस्थाओं के लिए :
वार्षिक (4 अंक) : 240 रुपये (डाक खर्च सहित)

नया ज्ञानोदय रजिस्टर्ड पोस्ट से मँगाने हेतु डाक व्यय अतिरिक्त

नया ज्ञानोदय की ई-प्रति www.notnul.com पर उपलब्ध है।

शुल्क 'भारतीय ज्ञानपीठ (**Bharatiya Jnanpith**) के नाम से उपर्युक्त पते पर भेजें।

(केवल मनीआर्डर / चेक / बैंक ड्राफ्ट से)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक, प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से भारतीय ज्ञानपीठ का सहमत होना आवश्यक नहीं। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

आवरण व साज-सज्जा : महेश्वर, भीतरी रेखांकन : संदीप राशिनकर

www.jnanpith.net

साहित्य, समाज, संस्कृति और कलाओं पर केंद्रित

नया ज्ञानोदय मासिक पत्रिका के

वार्षिक सदस्य बनें

व्यक्तियों / संस्थाओं के लिए

वार्षिक (4 अंक) : 240 रुपये (डाक खर्च सहित)

नया ज्ञानोदय रजिस्टर्ड पोस्ट से मँगाने हेतु डाक व्यय अतिरिक्त

शुल्क 'भारतीय ज्ञानपीठ' (Bharatiya Jnanpith) के नाम से भेजें।
(केवल मनीआर्डर / चेक / बैंक ड्राफ्ट से)

सम्पादक : **मधुसूदन आनन्द** | सह-सम्पादक : **महेश्वर, प्रभाकिरण जैन**

भारतीय ज्ञानपीठ

18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110 003

फोन : 011-2462 6467, 2469 8417, 4152 3423 ई-मेल : nayagyanoday@gmail.com / bjnanpith@gmail.com

www.jnanpith.net

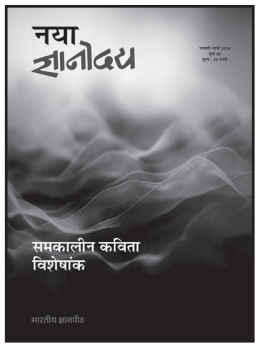

साहित्य, समाज, संस्कृति और
कलाओं पर केन्द्रित

अंक : 225
जनवरी-मार्च : 2024
पृष्ठ : 84 (आवरण सहित)

www.jnanpith.net

अनुक्रम

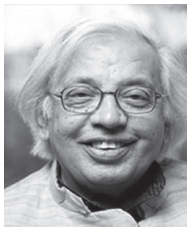
अशोक वाजपेयी

आलोक धन्वा

अनामिका

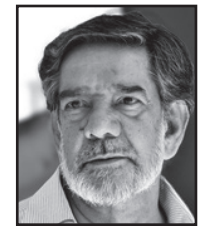
राजेश जोशी

विनोद कुमार शुक्ल

अनीता भारती

समकालीन कविता विशेषांक

आलेख

समकालीन हिंदी कविता और यह विशेषांक : प्रियदर्शन / 4

अच्युतानंद मिश्र / 7
अनामिका / 8
अनिल करमेले / 9
अनीता भारती / 10
अनुराधा सिंह / 11
अमिताभ / 12
अरुण कमल / 13
अरुण देव / 14
अरुणाभ सौरभ / 15
अशोक वाजपेयी / 16
अष्टभुजा शुक्ल / 17
असद जैदी / 18
आलोक धन्वा / 19
इब्बार रब्बी / 20
उमाशंकर चौधरी / 21
ऋतुराज / 22
कात्यायनी / 23
कुमार अम्बुज / 24
कुलदीप कुमार / 25
गिरधर राठी / 26
जितेंद्र श्रीवास्तव / 27
ज्योति चावला / 28
दिनेश कुमार शुक्ल / 29
दिविक रमेश / 30
देवी प्रसाद मिश्र / 31
नरेन्द्र गौड / 32
नरेश सक्सेना / 33
निशांत / 34
नीलेश रघुवंशी / 35
पंकज चतुर्वेदी / 36
प्रभात / 37
प्रयाग शुक्ल / 38
बाबुषा कोहली / 39
भरत प्रसाद / 40
मदन कश्यप / 41
रश्मि भारद्वाज / 42
राजेश जोशी / 43
लीलाधर जगूडी / 44
लीलाधर मंडलोई / 45
वसंत सकरगाए / 46
विजय कुमार / 47
विजया सिंह / 48
विनोद कुमार शुक्ल / 49
विनोद पदरज / 50
विमल कुमार / 51
विष्णु नागर / 52
संजय कुंदन / 53
सविता सिंह / 54
सुजाता / 55
सुन्दर चंद ठाकुर / 56
सुभाष राय / 57
स्वप्निल श्रीवास्तव / 58
हरि मृदुल / 59
ज्ञानेंद्रपति / 60

ज्ञान गरिमा के 79 वर्ष
भारतीय ज्ञानपीठ

समकालीन हिंदी कविता और यह विशेषांक

प्रियदर्शन

प्रियदर्शन

जन्म : 24 जून, 1968 राँची।

अँग्रेज़ी में राँची विश्वविद्यालय से एम.ए. की पढ़ाई करने के बाद उसी शहर से पत्रकारिता की शुरुआत।

प्रकाशित पुस्तकें हैं–'ज़िन्दगी लाइव' (उपन्यास); 'बारिश, धुआँ और दोस्त', 'उसके हिस्से का जादू' (कहानी-संग्रह); 'नष्ट कुछ भी नहीं होता' (कविता-संग्रह) सहित नौ किताबें प्रकाशित। कविता-संग्रह मराठी में और उपन्यास अंग्रेज़ी में अनूदित। सलमान रुश्दी और अरुंधति रॉय की कृतियों सहित सात किताबों का अनुवाद और तीन किताबों का सम्पादन।

सम्मान : कहानी के लिए पहला 'स्पन्दन सम्मान'।

मो. 98119 01398

हिंदी कविता के वर्तमान परिदृश्य में कई पीढ़ियां एक साथ सक्रिय और रचनारत हैं। इनमें बीती सदी के साठ और सत्तर के दशकों से अपनी पहचान बनाने वाले कवि भी हैं और बिल्कुल बीते एक दशक में उभरे कवि भी। यानी कम से कम पचास साल का एक भरा-पूरा कालखंड है जिसमें हिंदी कवियों की यह विरल उपस्थिति संभव हुई है। इन पचास वर्षों में दुनिया काफी कुछ बदल गई है। 1971 में 55 करोड़ रही भारत की आबादी अब डेढ़ अरब को छूने जा रही है– यानी ढाई गुने से ज्यादा बढ़ चुकी है। इस जनसांख्यिकीय वृद्धि के अपने समाजशास्त्रीय प्रभाव रहे हैं। तब लगभग गांवों में रहने वाला भारत अब शहर चला आया है। पुरानी ग्राम्य संवेदना की सरलता-तरलता अब नागर समाज और समय की जटिलता में बदल चुकी है। खेतिहर समाज अब नौकरीपेशा और व्यवसायी समाज है। राजनीतिक और वैचारिक बदलाव भी बेहद स्पष्ट और बहुपरतीय हैं। आज़ादी के बाद का पहला मोहभंग साठ और सत्तर के दशकों में ही शुरू हुआ था। उस दौर की हिंदी कविता में इस मोहभंग को बहुत स्पष्टता से पहचाना जा सकता है।

सत्तर के दशक के नक्सलवादी आंदोलन ने कई भारतीय भाषाओं की कविता को नई धार दी और नए तेवर दिए। हिंदी पर भी उसका प्रभाव बहुत गहरा रहा। उस दौर की एक पूरी पीढ़ी इस आंदोलन के वैचारिक आदर्शों की छाया में पली और चली। जो इससे बाहर रहे, वे भी मोटे तौर पर वाम और प्रगतिशील चेतना से लैस रहे। शीत युद्ध के अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य में सोवियत संघ और अमेरिकी खेमे के बीच जो विचारधारात्मक टकराव रहे, उसका असर भी भारतीय साहित्य और कविता पर भरपूर पड़ा। बल्कि बीच में एक संक्षिप्त दौर ऐसा भी रहा जब यह विचारधारात्मक आग्रह लगभग दुराग्रह में बदलता दिखा और उन सारे कवियों-लेखकों को ख़ारिज करता रहा जो इस वैचारिक परिधि के पार 'दूसरे पक्ष' में खड़े दिखाई देते रहे।

नब्बे का दशक इस वैचारिक बाड़ेबंदी को ही नहीं, सारी दुनिया की राजनीतिक और वैचारिक संरचनाओं को तहस-नहस करने का दशक साबित हुआ। सोवियत संघ के ढहने के साथ मार्क्सवादी वैचारिकता को प्रश्रय देने वाले दुर्ग ढहते चले गए और शीत युद्ध की जानी-पहचानी राजनीति एक अनिश्चित क़िस्म के अंतरराष्ट्रवाद की चपेट में आती दिखी। एकध्रुवीय दुनिया की अपनी मुश्किलें थीं लेकिन लेखकों और कवियों के पास उसके समाधान नहीं थे। सभ्यता के ऐतिहासिक कारणों की पड़ताल करने वाले मिशेल फुको यह दौर देखने से पहले ही जा चुके थे और फ्रांसिस फुकुयामा 'द एंड ऑफ हिस्टरी ऐंड द लास्ट मैन' जैसी किताब लिखकर बता रहे थे कि मानवीय सभ्यता अपने राजनीतिक-सांस्कृतिक विकासक्रम के चरम तक पहुंच गई है और इसके आगे कोई राह नहीं है। दो-दो विश्वयुद्ध लड़ने वाले यूरोप को राष्ट्रवाद की अवधारणा का बेमानीपन समझ में आ रहा था और वह एक हो रहा था।

इन अंतरराष्ट्रीय परिघटनाओं के समानांतर भारत में भी काफी कुछ बदल रहा था। अयोध्या में राम मंदिर-बाबरी मस्जिद का ताला खोले जाने के बाद

चली राजनीति के विध्वंसक सांप्रदायिक रूप सामने आ रहे थे। इसके अलावा पहली बार भारतीय समाज बाज़ार के विराट स्वरूप को बिल्कुल अपने घर में पा रहा था। घरों के ऊपर दुकानें खुल रही थीं, खुली जगहें मार्केट कॉम्प्लेक्स में बदली जा रही थीं। उदारीकरण के बाद भूमंडलीकरण का स्वाद चख रहा भारतीय मध्यवर्ग धीरे-धीरे उपभोक्ता वर्ग में तब्दील होता जा रहा था। मनोरंजन अब संस्कृति का नहीं, विराट उद्योग का हिस्सा था। आधुनिकता से जुड़ी पुरानी अवधारणाएं ध्वस्त हो रही थीं और नई उत्तर-आधुनिक प्रवृत्तियां सिर उठा रही थीं। उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद की जगह नव उपनिवेशवाद और नव साम्राज्यवाद सक्रिय था, तीन सदी पुरानी औद्योगिक क्रांति को सूचना क्रांति अपदस्थ कर रही थी, राष्ट्रवाद की जगह अंतरराष्ट्रवाद या क्षेत्रवाद उभर रहा था, तमाम तरह की अस्मिताएं राजनीतिक आंदोलनों से अपना दाय माँग रही थीं।

बीते दो दशकों में यह प्रक्रिया बिल्कुल सांस रोक देने वाली गति से आगे बढ़ी है। हमारा घर-आंगन, जीवन-व्यवहार सब कुछ बदल चुका है। घरों में आंगन और कुएं नहीं बचे, बरामदा और ओसारा पुरानी शब्दावली में बदल गए और बालकनी, ड्राइंग रूम और डाइनिंग हॉल चले आए। मोहल्लों को तोड़ कर अपार्टमेंट उभरने लगे। साइकिल चलाने वाला हिंदुस्तान कार चलाने लगा। ट्रेनों में सफर करने वाला देश विमानों में घूमने लगा। इस आर्थिक चमक-दमक के समानांतर विषमता का एक बड़ा संसार भी पुष्पित पल्लवित होता रहा- जैसे वह इसी देश का एक विराट उपनिवेश हो। लेकिन इस पूरी प्रक्रिया में सामाजिकता का, पारिवारिकता का, सामूहिकता का जो ह्रास हुआ है, उसके प्रभाव की ठीक से पड़ताल बाक़ी है। आर्थिक तौर पर समृद्ध होता भारत सांस्कृतिक तौर पर लगातार विपन्न हुआ है। अब अपने घरों से बेदखल, अपनी जड़ों से कटा एक ऐसा समाज हमारे सामने है जिसे बहुत आसानी से बांटा जा सकता है- जिसका कुछ प्रभाव हम इन दिनों अपने विकृततम स्वरूप में नज़र आ रही सांप्रदायिक वैचारिकी में देख सकते हैं।

पचास वर्षों के इस पूरे परिदृश्य को ठीक से समझे बिना हम इस दौर की हिंदी कविता और उसकी प्रवृत्तियों पर बात नहीं कर सकते। क्योंकि जिस तरह समाज बदला है, ठीक उस तरह तो नहीं, लेकिन उसके आसपास कविता में भी बदलाव आए हैं। हिंदी कविता में पहले जो ग्राम संवेदना सहज-सुलभ थी, वह अब विरल हो चुकी है। हालांकि इस पर किसी स्मृतिजीवी उछाह के साथ शोक मनाने का कोई अर्थ नहीं है। लेकिन यह समझना ज़रूरी है कि हिंदी कविता में अब खेत-खलिहान, बाग-बगीचे, किसानी के संकट आदि कम नज़र आते हैं। इसकी विडंबना यह है कि इत्तिफ़ाक से इन्हीं वर्षों में खेती लगभग एक संकट में बदल चुकी है, लाखों किसान आत्महत्या कर चुके हैं और जो बचे हुए हैं, उनका जीवन खासी मुश्किलों में गुज़र रहा है। इस विषय पर बीते कुछ वर्षों में उपन्यास तो आए हैं लेकिन कविता के संसार में इनकी उपस्थिति क्षीण दिखाई पड़ती है। शायद इसलिए भी कि यह संकट अभी तक गैरहिंदीभाषी प्रदेशों का ज्यादा रहा है– यानी महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, गुजरात या इन दिनों पंजाब-

पचास वर्षों के इस पूरे परिदृश्य को ठीक से समझे बिना हम इस दौर की हिंदी कविता और उसकी प्रवृत्तियों पर बात नहीं कर सकते। क्योंकि जिस तरह समाज बदला है, ठीक उस तरह तो नहीं, लेकिन उसके आसपास कविता में भी बदलाव आए हैं। हिंदी कविता में पहले जो ग्राम संवेदना सहज-सुलभ थी, वह अब विरल हो चुकी है। हालांकि इस पर किसी स्मृतिजीवी उछाह के साथ शोक मनाने का कोई अर्थ नहीं है।

जैसे राज्यों का। लेकिन क्या यह अपने-आप में हिंदी कविता के कुछ सिकुड़ जाने की सूचना नहीं है?

बहरहाल, इस प्रक्रिया का दूसरा प्रभाव कविता के शिल्प और उसकी भाषा पर भी पड़ा है। जिस तरह जीवन से एक पूरी शब्दावली बेदख़ल होती जा रही है, उसी तरह वह कविता में भी अदृश्य होती लग रही है। बेशक, कुछ कवियों के कोठार में ये पुराने शब्द बचे हुए हैं और उन्हें पढ़ना एक सुखद अनुभव की तरह आता है, लेकिन यह अनुभव जीवन की सहजता-सरसता के आत्मीय स्पर्श से ज्यादा एक स्मृति तक फिर से लौटने के सुख की तरह आता है।

बदलाव और भी हैं। आज़ादी के बाद के मोहभंग ने हमें गहन वैचारिक और संवेदनात्मक कविता सुलभ कराई जिसका बहुत स्पष्ट राजनीतिक पक्ष रहा। मुक्तिबोध और धूमिल इस प्रवृत्ति के दो अलग-अलग छोर है। मुक्तिबोध कहीं आत्मा के अंतस्तल में सुलग रहे ज्वालामुखी जैसे तप्त हैं तो धूमिल उसके वाह्य विस्फोट की तरह तड़कते हुए। सत्तर के दशक की नक्सलवादी छाया हिंदी कविता पर बहुत गहरी दिखाई पड़ती है। आलोकधन्वा और मंगलेश डबराल जैसे कवि इसी की उपज दिखाई पड़ते हैं। इसके कुछ व्यापक रूप में एक जनवादी धारा दिखाई पड़ती है जो नागार्जुन, त्रिलोचन और केदारनाथ अग्रवाल की त्रयी से अलग कई और कवियों के विकास में पहचानी जा सकती है। यह सच है कि ये तीनों कवि पहले से रचनारत हैं, लेकिन इस दौर में उन्हें जो मान्यता और स्वीकृति मिलती है, वह पहले नहीं दीखती। इस दौर में विनोद कुमार शुक्ल जैसे मितकथन वाले कवि का पहला संग्रह 'लगभग जयहिंद' के नाम से आता है।

लगभग नब्बे के दशक तक यही दौर दिखाई पड़ता है। हिंदी कविता की मुख्यधारा जनवादी धारा है और इससे अलग दिखने वाले कवियों– अज्ञेय और कुंवर नारायण से लेकर अशोक वाजपेयी या कई अन्य कवि तक इस मुख्यधारा के किनारे खड़े हैं– बेशक, अपनी निश्चित पहचानों और सक्रियताओं के साथ जिसमें जनवाद